बी-ए० भाग-3
हिन्दी-प्रतिष्ठा
अलंकार-संप्रदाय

रमेश कुमार यादव
हिन्दी-विभाग
डी-के-कालेज डुमरॉव
बक्सर (बिहार)

अलंकार संप्रदाय —

भारतीय साहित्य शास्त्र की परंपरा का शब्द है। अलंकार का सामान्य अर्थ है 'आभूषण'। जिस प्रकार अलंकार को धारण करने से नारी के सहज सौंदर्य में वृद्धि होती है उसी प्रकार कविता में भी अलंकार के प्रयोग से कविता के सौंदर्य में वृद्धि होती है। इस तरह अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म है।

सामान्य जीवन में वाणी का व्यापार अपनी सहज गति से चल सकता है, परन्तु काव्य के क्षेत्र में उसका अपेक्षाकृत विशिष्ट रूप ही अधिक मान्य है। अपने कथन को चमत्कारपूर्ण बनाने का मोह कवि और रसिक-समुदाय में सदा से रहा है। इसके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौंदर्य का संपादन होता है।

काव्य में रमणीयता और चमत्कार का उद्रेक करने के लिए अलंकारों की स्थिति आवश्यक है। कुछ आचार्यों ने अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है। 'चंद्रालोक' के रचयिता महाकवि जयदेव अलंकार-विहीन काव्य को उष्णता-विहीन-अग्नि के समान मानते हैं। उनके कथनानुसार जिस प्रकार उष्णता अग्नि का स्वाभाविक धर्म है उसी प्रकार अलंकार काव्य का सहज धर्म है। उन्होंने लिखा है —

"अंगी करोती यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कुछ कस्मादनुष्णमनलंकृती॥"

किन्तु यह मान्यता कुछ आचार्यों की है जिन्हें अलंकारवादी कहा जा सकता है। दूसरी ओर अपेक्षाकृत समृद्ध परंपरा ऐसे आचार्यो की है जो अलंकार को कविता के लिए अनिवार्य धर्म के रूप में नहीं मानते। इनके अनुसार अलंकार के स्वाभाविक इस्तेमाल से कविता के सौंदर्य में वृद्धि होती है। बहरहाल, भामह, दण्डी, वामन, कुन्तक से लेकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल तक सभी ने किसी न किसी सीमा तक अलंकारों का महत्व स्वीकार किया है।

आचार्य भामह का कथन है कि जिस प्रकार बिना आभूषण के किसी कांता का सुन्दर मुख भी शोभायमान नहीं होता उसी प्रकार अलंकार-विहिन सुन्दर कविता भी लोकप्रिय नहीं होती।

"न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्"

आचार्य कुन्तक अलंकार-विहीन काव्य को काव्य की संज्ञा ही नहीं देना चाहते। अलंकृत शब्दार्थ-रचना को ही वे काव्य मानते हैं। महर्षि वेदव्यास ने इन सभी आचार्यो से पूर्व ही ही घोषित किया था कि अलंकार-रहित काव्य उसी प्रकार है जैसे विधवा नारी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य के क्षेत्र में 'सौंदर्य' और 'वैचित्र्य' को दो भिन्न तत्व माना है। उनके विचार से यद्यपि काव्य के लिए दोनों तत्वों का होना आवश्यक है परन्तु सौंदर्य से वैचित्र्य अधिक व्यापक है। इसके अंतर्गत अलंकारों के साथ-साथ भाव, रूप, गुण आदि का भी उत्कर्षपूर्ण अस्तित्व रहता है। यदि अलंकारों को ही काव्य का सर्वस्व

मान लिया जाए और काव्य के अन्य गुणों की उपेक्षा कर दी जाए तो ऐसा काव्य उसी प्रकार का होगा जैसे कोई निर्जीव शरीर को आभूषणों से मंडित करे। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा देते हुए अलंकार की अनिवार्यता को स्वीकार नहीं किया है, 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि। उनके 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' में अलंकार विहीनता को भी काव्य में स्वीकृति मिली है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अलंकार की अधिक उपयुक्त परिभाषा हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में देकर इस विषय को अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं - "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के गुण और क्रिया का अधिकाधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।"

काव्यशास्त्र के इतिहास में अलंकारों का महत्व सबसे पहले स्वीकृत हुआ है। महर्षि यास्क और पाणिनि जैसे आचार्यों ने भी 'उपमा' के विविध अंगों का उल्लेख किया है। अलंकार-विवेचक आरंभिक ग्रन्थों का पता नहीं चलता परन्तु विद्वानों ने महर्षि पाणिनि और आचार्य भामह के काल सीमा के भीतर अलंकार विवेचक अनेक अन्य आचार्यों का अस्तित्व स्वीकार किया है। पाणिनि ने जहां उपमादि अलंकारों के साथ रसादि का भी उल्लेख किया है। वहां भामह ने अपने 'काव्यालंकार' नामक ग्रंथ में केवल अलंकार को ही काव्य की आत्मा

सिद्ध करते हुए उसका विस्तृत विवेचन किया है। भामह के उपरांत दंडी, उद्भट, और रुद्रट ने अलंकार विवेचन को और भी अधिक पुष्ट एवं विस्तृत किया इन आचार्यों ने अलंकार के साथ रस और भावों पर भी विचार किया।

अलंकार संप्रदाय के अनुवर्ती आचार्यों ने अलंकारों का वर्गीकरण करते समय उनके मूल तत्वों पर भी विचार किया है। अलंकारों के विभाग के लिए कतिपय सिद्धांत भी निश्चित किए हैं। अलंकारों के वर्गीकरण के वैज्ञानिक स्वरूप का सर्वप्रथम निर्देश हमें रुद्रट के काव्यालंकार में मिलता है। इस विषय में आचार्य रुय्यक और विद्याधर का निरूपण बड़ा ही युक्ति-संगत, मौलिक और वैज्ञानिक है। इस संप्रदाय की प्राचीनता का आभास इसी तथ्य से मिलता है कि हमारे समस्त आलोचना-शास्त्र का प्राचीनतम नाम इसी के नामानुरूप 'अलंकार-शास्त्र' है।

सारांश यह है कि उपर्युक्त अलंकारवादी आचार्यों ने रस-तत्व को भी अलंकार का ही एक रूप माना है। दंडी और भामह ने अलंकार का जो महत्व काव्य में प्रतिपादित किया, वह किसी न किसी रूप में परवर्ती युगों तक मान्य रहा है। हिन्दी साहित्य के रीतिग्रंथों में अलंकारवाद का स्पष्ट प्रतिपादन तो नहीं है, पर यह उसकी शैलीगत विशेषता अवश्य रही है और समूचे रीतिकाल में चलती रही है।

रमेश कुमार यादव
असिस्टेंट- प्रोफेसर
हिन्दी- विभाग
डी. के. कालेज डुमरॉव, बक्सर
(बिहार)